International Journal of Applied Research 2021; 7(10): 321-333

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(10): 321-333
www.allresearchjournal.com
Received: 27-08-2021
Accepted: 29-09-2021

बद्री प्रसाद यादव
बौद्ध अध्ययन विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
बद्री प्रसाद यादव
बौद्ध अध्ययन विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

भारतीय शिक्षा का स्वरूप, समस्या और समाधान

बद्री प्रसाद यादव

प्रस्तावना

श्रीमद्भग्वद् गीता, अठारहवां और अंतिम अध्याय, इस अध्याय में श्रीकृष्णार्जुन संवाद का अंतिम श्लोक –

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धः त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितिऽस्मि गत संदेहः करिष्ये वचनं तवः ।।"

इस श्लोक में अर्जुन, जिसे श्रीकृष्ण है भारत!' कह कर संबोधित करते हैं, वो अर्जुन अपने मोह के नष्ट होने और अपने गुरु व सखा कृष्ण के वचनों को फलीभूत करने की घोषणा करता है। इसके साथ ही घोषणा होती है इस भारत भूमि के साथ शिक्षा के अटूट जुड़ाव की। इसके साथ ही घोषणा होती है, भारतीयों के "भा" अर्थात प्रकाश में "रत" रहने की। और इसके साथ ही घोषणा होती है भारत के एक स्वअनुशासित शिष्य व सम्पूर्ण जगद हिताय गुरु बनने की। शिक्षा के चरम उद्देश्य "सत्यं शिवं सुन्दरं" को साकार करने वाली यह भूमि भारत वर्ष आज अपने संक्रमण काल से गुजरते हुए समूचे विश्व को साथ लेकर चलने को तैयार है। शिक्षा मानव जीवन की एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य ने होमोसेपियन्स से मानव और फिर महामानव तक का सफर तय किया है। इतिहास में विश्व की अलग-अलग सभ्यताओं ने अपनी संस्कृति और विरासत को सुरक्षित करने के लिए शिक्षा का ही रास्ता अपनाया है।
इस तरह शिक्षा वह साधन और साध्य है जिससे हर आने वाली नयी पीढ़ी अपने से पुरानी पीढ़ी से अधिक ज्ञान पूर्ण, अधिक प्रेम पूर्ण, अधिक सेवा पूर्ण जीवन जी सकती है।

शोध के उद्देश्य -

1. भारतीय शिक्षा व्यवस्था के ऐतिहासिक व वर्तमान स्वरूपों को अलग अलग कालों में कारणों सहित देखना ।
2. भारत में आज की शिक्षा की निराशाजनक स्थिति एवं बड़ी खामियों को रेखांकित करना।
3. शिक्षा के नैसर्गिक उद्देश्यों सत्यं, शिवं, सुन्दरं के तार्किक पक्ष को रखना।

4. वैश्विक शिक्षा के पहलुओं और नवाचारों को ध्यान में लाना।
5. इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए व्यूहरचना बनाना।

परिकल्पना –

यदि भारतीय शिक्षा की ऐतिहासिक व वर्तमान भूलें दूर करके वैश्विक नवाचारों को ध्यान में रखा जाए और शिक्षा नीति में व्यष्टि परक तत्व समावेशित किये जाएँ तो "सत्यं शिवं सुंदरम "की प्राप्ति की जा सकती है । आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में आ रही समस्याओं का निदान किया जा सकता है।

शोध विवरण -

भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक एवं आधुनिक पक्ष के साथ परिवर्तन-

भारतीय शिक्षा व शिक्षा व्यवस्था के स्वरुप में इतिहास में कई बार परिवर्तन हुए हैं। अलग-अलग कालों में उस काल के राजनैतिक व सामाजिक - सांस्कृतिक स्थिति के हिसाब से शिक्षा व शिक्षा व्यवस्था बदलती चली गई। कभी राजनैतिक शक्तियों ने तो कभी धार्मिक व सामाजिक शक्तियों ने अपनी सत्ता को ध्यान में रखते हुए शिक्षा व्यवस्था के स्वरुप का निर्माण किया । जहाँ उत्तर पाषाण काल व सिंधु सभ्यता में शिक्षा जीविकोपार्जन व पारिवारिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन थी, वैदिक काल व स्मृतियों के युग आते आते यही शिक्षा धर्म का रक्षण व पोषण करते हुए साध्य बन चुकी थी। वैदिक कालीन गुरुकुलों में दीक्षा, तप, जप, कठोर अनुशासन आदि के द्वारा शिक्षा के कई उद्देष्यों जैसे चरित्र व व्यक्तित्व विकास, धर्म का अनुसरण, संस्कृति का रक्षण व विकास एवं सामजिक एकता आदि को साधा जाता था।

भारत में मौर्य वंश, गुप्त वंश और अन्य राजाओं के काल में शिक्षालय आश्चर्यजनक रूप से कला स्थापत्य व विज्ञान के केंद्र बने थे। इस समय में विभिन्न धर्मों के उपाध्यायों व गुरुकुलों की सक्रियता थी। नालंदा, तक्षशिला और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों की कीर्ति पूरे विश्व में थी। धर्म, कला, विज्ञान, व दर्शन की शिक्षा हमारी संस्कृति का अंग बन चुकी थी। उसके बाद सल्तनत काल व मुग़ल काल संस्कृतियों के मिश्रण के गवाह बने। पाली, प्राकृत आदि प्राच्य भाशाओँ के साथ अरबी, फ़ारसी आदि भाषाएँ भी प्रचलित हुई। विभिन्न कलाओं जैसे चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत व स्थापत्य की विदेशी शैलियों ने देशी शैलियों के साथ मिश्रण करके नए आयाम खोले। पूरे उत्तर भारत व दक्षिण भारत में अगणित पाठशालाएं, महाविद्यालय, मदरसे, गुरुकुल आदि अध्ययन केंद्र स्थापित हो चुके थे। शिक्षा अभी भी अपने क्षेत्र, समाज व धर्म से जुडी हुई थी।

औपनिवेशिक काल में यूरोपीय शक्तियों के पूरे विश्व को गुलाम बनाने के स्वप्न से भारतीय शिक्षा के परिदृश्य में बड़े परिवर्तन आये। अन्य उपनिवेशों की तरह ही भारत के राजकाज को चलने लिए अंग्रेजों को नौकरशाही की आवश्यकता थी और इसके लिए बड़े पैमाने पर कर्मचारियों को तैयार किये जाने की जरुरत थी। इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए विद्यालयों को ऐसे कुशल कर्मचारियों के उत्पादन केन्द्रों की तरह काम में लिया जाने लगा। शिक्षा का सम्बन्ध नौकरशाही से हो गया। प्रशासन, न्याय, वाणिज्य, राजस्व आदि विभागों के पहलु पाठ्यक्रम के अंग बने। मैकाले, कर्जन, वुड, हंटर आदि के विचार व विवरण पढ़ने से हमें उनके उद्देश्य समझ आते हैं। इस तरह उद्देश्य बदलते गए, साँचे ढलते गए। शिक्षा किसी न किसी रूप में पनपती रही।

अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था के ढांचे को इस प्रकार से ढाल दिया कि वह नौकरशाही की शाखा के रूप में काम करने लगी और नौकरशाही, जो पहले अंग्रेजों को स्थापित रखने के काम आती थी, आजादी के बाद अब वह लोकतंत्र का अनिवार्य अंग बन गयी थी। आजाद भारत के संविधान निर्माताओं व स्वप्नदृष्टाओं ने भारत के सामने बहुआयामी लक्ष्य रखे। जहाँ एक ओर भारत को सामरिक-प्रशासनिक तौर पर संभलना था, वहीँ दूसरी ओर समाजवाद और पंथनिरपेक्ष जैसे आदर्शों को भी निभाना था। इस स्थिति में शिक्षा को जल्दबाजी में समष्टि मूलक तथ्य बना दिया गया जो अन्य सरकारी विभागों की तरह समाज में शांति, व्यवस्था एवं विकास बनाये रखने का साधन मात्र था। वे ही उद्देश्य जो भारतीय समाज के सामने थे, शिक्षा नीति के आगे भी रख दिए गए। ऐसे उद्देश्य जो मापे नहीं जा सकते। परिणामस्वरूप न तो स्कूली पद्धति में बदलाव की आवश्यता महसूस की गयी ना ही पाठ्यक्रम, शिक्षणविधियों व गुरु-शिष्य संबंधों पर मौलिकता से विचार हुआ।

शिक्षा के धुंधले उद्देश्य, उधार की शिक्षण विधियां, बेतुके पाठ्यक्रम और चरमराते पुराने स्कूलों से आजाद भारत की नयी पीढ़ी शिक्षित होने को विवश हुई। उसके पश्चात एक के बाद एक उच्च शिक्षा के लिए राधाकृष्णन समिति,

माध्यमिक शिक्षा के लिए मुदालियर आयोग, विद्यालयी शिक्षा के लिए कोठारी आयोग व साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीतियां **1986, 1992, 2005** आदि कई सारे प्रयास हुए परन्तु **10+2+3** व उच्च शिक्षा मात्र डिग्री व नौकरी प्रदाता ही बनी रही।

वर्तमान स्वरूप की समस्याएं

सन 1947 के बाद भारत में आश्जचर्नयक रूप से वैज्ञानिकों ने जन्म लेना बंद कर दिया। आजाद भारत के कई संभावित वैज्ञानिक और ना सिर्फ वैज्ञानिक बल्कि गणितज्ञ, खगोलविद, संगीतज्ञ, चित्रकार, मूर्तिकार, हस्तशिल्पज्ञ, खिलाडी, दार्शनिक, साहित्यकार, कवि, अर्थशास्त्री व राजनीतिज्ञों आदि संभावित महापुरुषों की प्रतिभाएं स्कूलों की व्यवस्था के नीचे दबकर ख़त्म हो गयी।

सरकारों ने आंकड़ों से प्यार किया और शिक्षा में गुणात्मक सुधारों को अपनाने की बजाय साक्षरता के आंकड़ों को प्राथमिकता माना गया। मात्रात्मक वृद्धि को उपलब्धि समझ लिया गया। पाठ्यक्रमों की ऐसी दुर्दशा हो गयी कि *15-20* साल में स्कूल-कॉलेज से निकलने वाला भारतीय विद्यार्थी सब कुछ पढ़ लेता है, परीक्षा दे लेता है, अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो जाता है पर आत्मसात कुछ भी नहीं कर पाता।

ऊपरी तौर पर तीन आयामों में कमियां दिखती हैं -

पहली व्यवस्थागत कमी - हमारी शिक्षा नीति के निर्माताओं ने शिक्षा की सफलता को व्यक्तिगत ना रखकर सामूहिक कर दिया गया। उदाहरण के लिए एक कक्षा में 50 बच्चे हैं, सभी का मानसिक, शारीरिक, पारिवारिक स्तर अलग अलग है फिर सभी को एक ही पाठ्यक्रम, एक ही कक्षा, एक ही समय में परीक्षा व एक ही तरह से मूल्यांकन क्यों? इस तरीके से किसी का सही विकास व मूल्यांकन नहीं हो पाता है और अंत में हमारी शिक्षा नीति ही फेल हो जाती है। कक्षा 6-12 तक गणित, सामाजिक, विज्ञान आदि विषयों की पाठ्यपुस्तकों में ऐसे बिंदु भी हैं जो इन विषयों में स्नातकोत्तर होने के समय फिर पढ़ाये जाते हैं। ये विसंगति नहीं तो और क्या है?

उच्च शिक्षा में फैशन की तरह डिग्री - डिप्लोमा नए आते जाते हैं और पुराने पड़ते जाते हैं। B.A., B.Sc., B.Com., इंजीनियरिंग, नर्सिंग के अलावा B.B.A, M.B.A., B.Tech., M.Tech., यहाँ तक कि CA, CS, MBBS और Ph.D. करने वालो की तादाद इतनी है फिर भी हमें योग्य सैनिक, योग्य भाशाविद, योग्य राजनेता, योग्य अर्थशास्त्री, योग्य चिकित्सक या योग्य नागरिकों तक की कमी खलती है।

दूसरी बड़ी खामी ये देखने को मिलती है कि बच्चों को हम सही ढंग से शिक्षण सेवा उपलब्ध नहीं करा पा रहे हैं। ये केवल स्कूलों की संख्या की ही नहीं बल्कि स्कूलों की गुणवत्ता का भी प्रश्न है । बच्चे चाहे अमीर परिवार के हों, चाहे गरीब परिवार के। चाहे गांव के हो, चाहे शहर के हों। चाहे किसी जाति, धर्म, क्षेत्र के हो। मनोवैज्ञानिक स्तर पर पढ़ने के प्रति सबका रवैया एक जैसा होता है। दुःख की बात है कि बहुत कम या न के बराबर बच्चे भारत में रुचिपूर्ण शिक्षा प्राप्त कर पातें हैं। हम उनके लिए वो वातावरण उपलब्ध नहीं करा पाते जो उन्हें विकसित करने में सहायता करे। उन्हें मात्र नामांकित कर देने से, पांचवी पास कर देने से मुफ्त पुस्तकें, गणवेश, लैपटॉप आदि दे देने से उनके मन पर हम क्या असर करना चाहते हैं?

और अब एक तीसरी व अति भयंकर भूल जो अंग्रेजों के काल में उनकी उपलब्धि थी और हमारे लिए गुलाम बनने व बनाने की मशीन। इसे B.Ed. कहा जाता है। शिक्षक प्रशिक्षण के नाम पर धड़ल्ले से डिग्रीयां बेचीं जाती हैं वो तो अपराध हैं ही। साथ ही पूरे शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को तल्लीनता से पूरा कर एक मशीन बन जाना भी एक नैतिक अपराध ही है इस स्तर पर दो तरफा गड़बड़ी चल रही है। अव्वल तो शिक्षक प्रशिक्षण की जटिल मशीनी प्रक्रिया का अनुसरण देश के हजारों B.Ed. कॉलेज करते नहीं हैं। B.Ed. की डिग्रीयां बांटी जाती है और लाखों फर्जी शिक्षकों की फ़ौज़ करोड़ों विद्यार्थियों के भविष्य के साथ सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों में खेलने लगती हैं। और अगर इस शिक्षक प्रशिक्षण की प्रक्रिया आत्मसात कर भी ली जाए तो इंसान शिक्षक बनने की बजाय पाठ्यक्रम पूरा करवाने वाली संवेदन हीन मशीन बन कर रह जाता है जिसका बच्चों के व्यक्तित्व, चारित्रिक व सर्वांगीण विकास से कोई लेना देना नहीं हैं। उसे तो बस समय पर कोर्स पूरा करवाने, गृहकार्य, परीक्षा आदि करवाने की फ़िक्र रहती है। हम जब शिक्षकों का निर्माण ही नहीं कर पा रहे हैं तो शिष्यों का निर्माण कैसे करेंगे?

विश्व परिदृश्य में शिक्षा इन सब से इतर वैश्विक शिक्षा के स्थिति को देखें तो उपनिवेश काल के बाद सभी देशों ने अपनी अलग अलग राह चुनी। कई उत्पादन की राह पर आगे बढे, कई वितरण के बाजार बने तो कई अब भी आपसी संघर्ष में लगे रहे। चीन, अमेरिका, अफगानिस्तान,

जापान, सिंगापुर आदि देशों की अलग अलग राष्ट्रीय दिशाएं व स्थिति देखने को को मिलती हैं। इनकी दिशाओं से इन देशों में शिक्षा के स्तर व शिक्षा का इनके समाज में योगदान का प्रतिशत तय होता है। जीवन के लिए कठिन एवं अविकसित अफ़्रीकी देश व अफगानिस्तान-इराक जैसे देशों में शिक्षा में साक्षरता के स्तर पर ही संकट है वहीँ अमेरिका की एक संस्था KIPP(नॉलेज इज पॉवर) ह्यूस्टन स्कूल द्वारा कई विद्यालयों को जोड़कर चलाये जा रहे कार्यक्रम में बालकों में गुणात्मक विकास पर काम किया जाता है महान शिक्षक तैयार किये जाते है शिष्यों में धैर्य, दया, शील, आत्मविश्वास जैसे गुण परीक्षा व पाठ्यक्रम के माध्यम से सिखाये जाते हैं और इन्हे मापा जाता है। जापान, इंडोनेशिया और सिंगापुर आदि देशों में देशभक्ति व ईमानदारी जैसे चारित्रिक गुण बाकायदा सिलेबस में पढ़ाये-सिखाये जाते हैं। विकसित देशों में शिक्षा सूचनात्मकता से गुणमूलकता की ओर बढ़ रही है, भारत स्वयं को इस विश्व में कहाँ पाता है ये सोचने का विषय है ।

शिक्षा:- मूल प्रवृति व चरम उद्देश्य

शिक्षा के बारे में व्यष्टि परक सोच रखते हुए सर्वप्रथम हमें यह विचार करना होगा कि एक व्यक्ति के लिए शिक्षा के उद्देश्य क्या हो सकते हैं? शिक्षा की प्राचीन पाश्चात्य व भारतीय परिभाषाओं को देखने से हमें पता चलता है कि शिक्षा एक प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति के भीतर अन्तर्निहित गुणों व पूर्णता का प्रकटीकरण एवं विकास होता है।

पश्चिमी विचारकों के द्वारा -

1. फ्रोबेल - "शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव की जन्मजात शक्तियां बाहर प्रकट होती हैं।"
2. पेस्टोलॉजी-"शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, समरूप व प्रगतिषील विकास है।"
3. सुकरात - "शिक्षा का अर्थ है संसार के उन सर्वमान्य विचारों को प्रकाश में लाना जो कि प्रत्येक मानव के मस्तिक्ष में निहित होते हैं।"

भारतीय चिंतन के अनुसार -

सा विद्या या विमुक्तये अर्थात विद्या वह है जो मनुष्य को (बंधनों से) मुक्त (भीतर से बाहर की ओर) करे

1. स्वामी विवेकानंद - "शिक्षा मनुष्य के अंदर सन्निहित पूर्णता का प्रदर्शन है।"
2. श्री अरविन्द - "अंतःनिहित ज्योति की उपलब्धि के लिए शिक्षा विकासशील आत्मा की प्रेरणादायी शक्ति है।"
3. महात्मा गांधी - "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक तथा मनुष्य में अन्तर्निहित शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक शक्तियों को प्रकाश में लाना है।"

शिक्षा के उद्देश्य वही है जिसे प्राचीन भारत में सत्यं, शिवं, सुंदरम कहा गया और 1948 में ब्लूम ने किसी मनुष्य का ज्ञानात्मक, भावात्मक व मनोगत्यात्मक विकास करना या मनुष्य को ज्ञानपूर्ण, प्रेमपूर्ण व कुशलतापूर्ण जीवन जीने के लिए तैयार करना।

भारतीय व पश्चिमी शिक्षा दार्शनिकों के बीच एक बड़ा अंतर यह है कि प्राचीन भारतीय विचारकों ने मनुष्य को नैसर्गिक रूप से ज्ञानवान, प्रेमभावी व कुशल माना था एवं उसके अनुसार गुरुकुलों में वातावरण निर्मिति की गयी थी। आधुनिक पश्चिमी शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य को पशुओं के समान प्रशिक्षित कर के उसे शिक्षित करने की आवशयकता महसूस की है। पावलव, स्किनर, थार्नडाइक आदि मनोवैज्ञानिकों के चूहे, कुत्ते, गोरिल्ले आदि पर किये गए प्रयोग आज भी शिक्षण तकनीकों का आधार बने हुए है।

उद्देश्यों को थोड़ा गहरे से समझने के लिए हम इस प्रश्न का सहारा ले सकते हैं कि एक मनुष्य पशु से किस प्रकार भिन्न हैं? विज्ञान के अनुसार मनुष्य जैविक रूप से बन्दर से विकसित हुआ है या धार्मिक सोच के अनुसार ईश्वर ने प्रत्येक नस्ल के जोड़े का निर्माण किया, उसी में मनुष्य बना है।

जो भी है, पर मनुष्य पशुओं से भिन्न है, अधिक विकसित है तो इसके पीछे तीन ठोस कारण हैं -

पहला है मनुष्य का मस्तिष्क। जिसने मनुष्य को विचारवान व तार्किक बनाया। ज्ञान के असीम भण्डार की शुरुआत आदिमानव के उन्नत मस्तिष्क के एक विचार से ही हुयी।

दूसरा - मनुष्य वो एकमात्र सौभाग्यशाली जीव है जो मुस्करा सकता है। मुस्कान व प्रेम इस सद्भाव पूर्ण समाज की नींव है जिससे मनुष्य एक सामाजिक पशु बना।

तीसरा है मनुष्य के हाथ की बनावट। ये वह अंग है जिसे मनुष्य की प्रथम मशीन कहा जा सकता है। सभ्यताओं के विशाल संसार इसी हाथ की बनावट एवं अंगूठे की विशिष्ठ स्थिति के कारण बन पाये। इससे मनुष्य कुशल बना, औजार बनाये और अपना जीवन स्तर ऊँचा उठाया।

और वास्तव में इन तीनो यानी मस्तिष्क सदभावना व कुशलता का अधिकाधिक विकास ही मनुष्य को पशुत्व से देवत्व की ओर ले जाता है और ये ही शिक्षा का उद्देश्य भी है। इस शिक्षा दर्शन को धरातल पर उतारने में आज की परिस्थितियों को देखते हुए कठिनाई आ सकती है पर सुधारों की शुरुआत किसी न किसी पीढ़ी को तो करनी ही होगी। सत्यं, शिवं, सुंदरम को धरातल पर उतारने के लिए भारतीय शिक्षा नीति व व्यवस्थाओं में विभिन्न स्तरों पर छोटे बड़े बदलावों की आवश्यकता है। वर्तमान में आज के शिक्षण ढांचे व उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखते हुए निम्न उपाय काम में लिए जा सकते हैं -

1. प्राथमिक शिक्षा के समय छोटे बच्चों को किसी पाठ्यक्रम, कालांश, कक्षाएं, परीक्षाएं आदि के बंधन में न बांधकर स्वतः सीखने के लिए प्रेरित करने वाला वातावरण बना कर देना होगा। प्रसिद्ध यूरोपीय शिक्षाविद सर कैन रोबिनसन के इस विचार से हमें सहमत होना चाहिए कि रचनात्मकता साक्षरता के जितनी ही महत्वपूर्ण है और रचनात्मकता तभी पैदा हो सकती है जब बंधन हटा लिए जाएँ। एक अन्य शिक्षाविद का ये विचार उल्लेखनीय है कि प्राथमिक शिक्षा को सिर्फ सर्वोत्तम शिक्षकों, जो यूनिवर्सिटी प्रोफेसर बनने लायक हैं, के ही हाथों में देना चाहिए क्योंकि सर्वोत्तम की आवश्यकता शुरुआत में होती है।
2. मशीनी तरीके से कक्षाओं में आधा घंटे विज्ञान, आधा घंटे हिंदी, आधा घंटे सामाजिक और आधा आधा घंटे के कालांषों में पढने-पढ़ाने से हम उस घुड़दौड़ का हिस्सा बन जाते हैं जिसे पाठ्यचर्या कहा जाता है यह एक लैटिन भाशा का शब्द है जिसका अर्थ है घोड़ों की रेस का मैदान इस सन्दर्भ में एक भारतीय शोधकर्ता सुगाता मित्रा की व्यवस्था उपाय प्रस्तुत करती है विज्ञान, सामाजिक व भूगोल आदि विषय सत्यं की श्रेणी में आते हैं और सत्य सदैव शोध करके पाया जा सकता है यद्यपि हम उसे पढ़ कर याद तो कर सकते हैं लेकिन आत्मसात नहीं कर सकते। इस व्यवस्था में शिक्षक प्रश्नों के क्रमिक सेट पाठ्यक्रम के रूप में बच्चों के सामने रखता है और बच्चे शोध व खोज का तरीका अपना कर सीखते हैं। इसकी तुलना प्राचीन दार्शनिक सुकरात से की जा सकती है। यदि ये तरीका अभी तात्कालिक रूप से अति अव्यावहारिक लगता हो तो भारतीय शिक्षाविद गिजू भाई बधेका की पुस्तक "दिवास्वप्न" में बतलाये तरीकों से हम वर्तमान ढांचे में रहते हुए ही अभूतपूर्व सुधार के कदम उठा सकतें हैं। इस पुस्तक में शिक्षक प्रयोगवादिता द्वारा रुचिपूर्ण व वैज्ञानिक ढंग से बालकों को पढाने व पाठ्यक्रम, परीक्षा आदि कसौटियों पर खरा उतारने का कार्य करता है।
3. विद्यालयों को बाहरी समाज से थोड़ा अधिक परिष्कृत व भौगोलिक अलगाव लिए हुए होना होगा जब तक समाज की विषमताएं न्यूनतम ना हो जाएँ। बालकों को पनपने के लिए हमें उन्हें शुद्ध वातावरण देने की व्यवस्था बनानी होगी। बड़े व बहुत सारे स्कूल खोलने की बजाय स्कूलों की आधारभूत संरचना में पर्याप्त जगह, प्राकृतिक परिवेश, विचारों के सम्प्रेशण की सुविधाएं आदि को सम्मिलित करना होगा जिससे स्पंदन युक्त वातावरण बने। इस सन्दर्भ में एक जापानी भाषा की पुस्तक Dialectic Method अच्छा मार्गदर्शन करती है जिसमें एक नन्ही सी बच्ची के प्यारे से स्कूल और उसके प्रयोगवादी प्रिंसिपल की सुन्दर सी कहानी है । इसमें बताया गया है कि किस प्रकार बच्चों को एक खुला मगर व्यवस्थित वातावरण देकर उनकी प्रतिभाओं व अच्छे गुणों का अर्थात शिवं का विकास किया जा सकता है।
4. इसके साथ ही कक्षा 6 से बच्चों को ध्यान की विधियों का अभ्यास कराया जाए। ध्यान, योग आदि क्रियाएं बचपन से ही मनुष्य को स्वयं के प्रति जागरूक रहना सीखती हैं द्य इससे विद्यार्थियों के मन, बुद्धि व शरीर का विकास होगा। ध्यान, योग, प्राणायाम आदि दिव्य क्रियाओं का समावेश यदि भारतीय शिक्षा के पाठ्यक्रम में नहीं होगा तो कहाँ होगा?
5. आज प्रत्येक उच्च माध्यमिक सरकारी विद्यालयों व अधिकांश निजी विद्यालयों में Projector-Computer की सुविधा है परन्तु उपयोग बहुत कम हो रहा है। सामाजिक, विज्ञान, भूगोल, इतिहास आदि विशयों के हजारों वीडियो इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। इन्हे दिखवाने की व्यवस्था बाकायदा सिलेबस में करवाई जाए। मनोवैज्ञानिकों ने अनुसार शिक्षकों के बोले हुए को सुन कर शिष्य जितना सीख सकता है उससे कई गुना अधिक टी.वी. पर देख कर समझ सकता है और याद कर सकता है।
6. आज विश्व के देश इतने घुल-मिल गए हैं कि किसी एक भाषा में समस्त ज्ञान भण्डार उपलब्ध नहीं हैं।

हिन्दी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं की भी अपनी समृद्धता है।

विद्यार्थियों को अलग-अलग समय में हिंदी, अंग्रेजी व कोई एक अन्य भारतीय भाषा सिखाई जाए। प्राथमिक व उच्च प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य रूप से मातृभाषा में ही हो।

7. परीक्षाओं में मूल्यांकन से अधिक प्रस्तुतीकरण की महत्ता होती है। परीक्षाओं का उद्देश्य ये होना चाहिए कि छात्रों को प्रस्तुतीकरण सिखाया जाए, छात्रों का प्रस्तुतीकरण मौखिक, लिखित, साक्षात्कार व सार्वजनिक प्रस्तुतियों द्वारा करवाया जा सकता है। सार्वजनिक प्रस्तुतीकरण द्वारा मूल्यांकन स्वतः ही हो जाता है। प्राचीन काल में पांडवों का युद्ध कौशलों का प्रदर्शन, वर्तमान समय में संगीत के रियलिटी शोज व विदेशों में होने वाले स्पेलिंग कॉम्पिटिशन आदि भी तो आखिर परीक्षाएं ही हैं।
8. शिक्षक और छात्र दोनों ही शिक्षण प्रक्रिया के एक ही छोर पर खड़े तत्व है, दूसरे छोर पर ज्ञान है। विद्यालय में शिक्षक खुद भी ज्ञानार्थ शोध करे, छात्रों की मदद ले। छात्रों द्वारा अपने से कम श्रेणी के छात्रों को पढ़ाने की व्यवस्था (Monitory teaching system) भी की जाए। विद्यालयों में शिक्षकों की संख्या नहीं बल्कि गुणवत्ता छात्रों को प्रभावित करती है द्य पुराने समय में एक ही गुरु के आश्रम में हज़ारों विद्यार्थियों के पढ़ने के पीछे यही रहस्य था।
9. विद्यालयों में शिक्षक-छात्रों के आवास की व्यवस्था हो। पूर्ण आवास संभव ना हो तो समय-समय पर शिविर लगाकर पूर्णकालिक शिक्षा का अभ्यास कराया जाए। इससे शिक्षक-शिष्य सम्बन्ध मजबूत होंगे द्य शिक्षक छात्रों की प्रकृति को पहचान पाएंगे व जिस दिशा में छात्र का उन्मुखीकरण हो, झुकाव हो उस दिशा में शिक्षक छात्रों को निर्देशित कर पाएंगे। इस व्यवस्था के द्वारा ही सुंदरम अर्थात विद्यार्थियों में किसी कला, हुनर, हस्तशिल्प या तकनीकी ज्ञान जैसी कुशलताओं का विकास किया जा सकता है।
10. रेडियो पर आने वाले Education Channels गाँवो के विद्यालयों के लिए जबदस्त काम आ सकते हैं। इग्नू का शैक्षिक चैनल 'ज्ञानवाणी' NCERT & UGC के साथ मिलकर रोजाना 4-12 घंटे तक शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण करता है। इसके संसाधनो को बढ़ाकर इसकी पहुंच गाँवो तक कर दी जाए तो इनसे कम संसाधनो में स्तरीय शिक्षा संभव है। साथ ही इसरो का प्रथम शैक्षिक उपग्रह edusat भी इस दिशा में चमत्कारिक रूप से काम में लाया जा सकता है द्य इस के माध्यम से पूरे देश के शिक्षण संस्थानों को जोड़कर शिक्षा के गुणात्मक स्तर में वृद्धि लायी जा सकती है और इस उपग्रह की स्थापना के दस साल के बाद भी हम इसकी क्षमता का बहुत काम हिस्सा काम में ला पाये हैं।

इस प्रकार कई उपायों द्वारा हम भारतीय शिक्षा व्यवस्था को नए आयाम दे सकते हैं। हमारी भारत माता को जगद्गुरु बनाने के लिए ये जरुरी है कि हम भारतीय आदर्श शिष्यों की भूमिका का निर्वहन करें। तभी शिक्षा के स्वर्ग इस भारतवर्ष में जहाँ अर्जुन अपने गुरु श्री कृष्ण से शिक्षित हो सत्य के लिए कर्म करने को तत्पर होता है वहीँ दिव्य दृष्टि प्राप्त संजय, भगवद गीता के अंतिम श्लोक में कह जाते हैं -

"यत्र योगेष्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री र्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।"

अर्थात जहाँ योगेश्वर श्री कृष्ण जैसे शिक्षक हैं, जहाँ धनुर्धर अर्जुन जैसे शिष्य हैं वहीँ पर श्री, विजय, विभूति एवं अचल नीति का निवास होता है ।

प्राचीन शिक्षा पद्धति की यदि हम आलोचनात्मक समीक्षा करें, तो उसमें गुणों के साथ-साथ कुछ दोष भी दिखाई देते हैं। इन दोषों का विवरण निम्नलिखित है-

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति पर धर्म का व्यापक प्रभाव था। यह व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास पर अधिक बल देती थी। इसका दृष्टिकोण व्यावहारिकता की अपेक्षा आदर्शवादी अधिक था।

शिक्षा के पाठ्यक्रम में लौकिक विषयों की अपेक्षा धार्मिक विषयों को प्रधानता दी गयी थी। अध्यापक अधिकतर पुरोहित हुआ करते थे, जिनका दृष्टिकोण पूर्णतया धार्मिक था। वेद, पुराण, दर्शन, धर्मशास्त्रों आदि के अध्ययन पर बल दिया गया। इसके विपरीत इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, खगोलविद्या आदि लौकिक विषयों के अध्ययन की उपेक्षा की गयी थी, जिससे इनका स्वतंत्र रूप से अध्ययन नहीं हो पाया। वाणिज्य, उद्योग तथा ललित कलाओं के अध्ययन पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप इनका विकास अवरुद्ध हो गया। शिल्प तथा कला निम्न-वर्गीय उद्यम बन गये।

भारतीय शिक्षा पद्धति में वेदों तथा उनके आधार पर प्रणीत ग्रंथों को अपौरुषेय एवं पवित्र माना जाता था। किसी प्रकार की शोध या कोई भी सिद्धांत इनके अविरुद्ध होने पर ही मान्य होता था। इसके परिणामस्वरूप अध्ययन के क्षेत्र में तर्कशक्ति का महत्त्व समाप्त सा हो गया तथा उसका स्वतंत्र विकास न हो सका। इस प्रकार की व्यवस्था में मौलिक चिन्तन तथा स्वतंत्र गवेषणाओं के लिये कोई भी स्थान नहीं रहा। आर्यभट्ट, वाराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, जैसे वैज्ञानिकों ने भी सूर्य एवं चंद्रग्रहण संबंधी सत्य जानते हुये भी पौराणिक अवधारणा के विरुद्ध बोलने का साहस नहीं किया। ब्रह्मगुप्त ने तो आर्यभट्ट तथा वाराहमिहिर की नवीन सिद्धातों के प्रतिपादन के लिये आलोचना भी की, यद्यपि वह जानता था, कि इनमें सत्य का अंश विद्यमान है। प्राचीन चिकित्सा पद्धति में बहुत समय तक जो विच्छेद की क्रिया का अनस्तित्व रहा उसके पीछे धार्मिक विश्वास ही उत्तरदायी रहा। इसी प्रकार ब्राह्मणों, बौद्धों, तथा जैनों द्वारा कृषि-कार्य त्यागने के पीछे भी धार्मिक रूढियाँ ही उत्तरदायी थी।

शिक्षा का उद्देश्य प्राचीन संस्कृति की सुरक्षा तथा उसे समृद्धशाली बनाना था। पाँचवीं शती तक दर्शन, भाषाविज्ञान, व्याकरण, तर्कशास्त्र, खगोल, गणित, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई। किन्तु बाद में भारतीय विद्वानों की रचनात्मक प्रतिभा जाती रही तथा उनकी समस्त शक्ति प्राचीन ज्ञान -विज्ञान को सुरक्षित रखने में ही लग गयी। भारतीय शिक्षा पद्धति ऐसे विद्वानों को तैयार न कर सकी जो प्राचीन ज्ञान विज्ञान की आलोचनात्मक समीक्षा कर नवीन मौलिक सिद्धांतों का प्रतिपादन कर सकते।

शिक्षा पद्धति में प्राचीन ज्ञान विज्ञान के ऊपर अतिशय बल दिये जाने का एक कुपरिणाम यह निकला कि भारतीय विद्वानों में कूपमण्डूकता आ गयी तथा वे विदेशी ज्ञान विज्ञान की प्रगति से उदासीन हो गये।आर्यभट्ट, वाराहमिहिर आदि कुछ प्रारंभिक विद्वानों ने अपने को बाह्य जगत की वैज्ञानिक प्रगति से परिचित रखा, किन्तु बाद के भारतीय विद्वान संकीर्ण, हठधर्मी तथा दंभी हो गये। अलबरूनी ने भारतीय विद्वानों की इस प्रवृति का उल्लेख किया है।

शिक्षा का प्राचीन दृष्टिकोण व्यापक था तथा सभी को इसे प्राप्त करने का अवसर मिला। किन्तु कालान्तर में यह उच्चवर्ग तक ही सीमित हो गयी तथा सामान्य जन इससे वंचित हो गये। शिक्षा का माध्यम संस्कृत थी तथा इसमें लोकभाषाओं की उपेक्षा की गयी। संस्कृत भाषा सामान्य जन की समझ से बाहर थी। हिन्दू विचारकों ने प्राकृत तथा अन्य जन भाषाओं को विकसित करना उपयुक्त नहीं समझा। समाज में संस्कृत के ज्ञाता विद्वान को ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

भारतीय शिक्षा पद्धति में विभिन्न शाखाओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास नहीं हुआ। प्रत्येक शाखा के विद्वान अपनी ही समस्याओं के विषय में सोचते थे। व्याकरण, साहित्य, तर्कविद्या, दर्शन, गणित, ललितकलाओं आदि के विविध विषयों की सापेक्षिक उपयोगिता को प्राचीन काल के शिक्षाविदों ने नहीं समझा। व्याकरण, साहित्य, तर्कशास्त्र आदि के अध्ययन पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया जाता था,जब कि इतिहास,गणित, खगोलविद्या आदि का अध्ययन अपेक्षाकृत उपेक्षित था। संगीत, चित्रकारी आदि ललित कलायें सामान्य पाठ्यक्रम का विषय नहीं थी।

इन सभी दोषों के अलावा प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में कई खूबीयाँ भी थी। जैसे कि, भारतीय संस्कृति के उत्कर्ष काल में शिक्षा व्यवस्था का दृष्टिकोण व्यापक था और इसमें संकीर्णता नहीं थी। सभी वर्गों के लिये शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला हुआ था। भारतीय शिक्षा के विभिन्न विषयों के प्रकाण्ड विद्वानों को उत्पन्न किया, जिन्होंने अपने ज्ञान से स्वदेश तथा विदेश को आलोकित किया। विदेशों से अनेक लोग भारतीय विद्वानों की ख्याति से प्रभावित होकर यहाँ अध्ययन करने के लिये आया करते थे। प्राचीन शिक्षा केन्द्रों में भारत के अलावा कई बाह्य देशों के विद्यार्थी भी शिक्षा ग्रहण करने के लिये आया करते थे। प्राचीन शिक्षा ने ही भारतीय संस्कृति की विरासरत को सुरक्षित रखा तथा उसे समृद्धशाली भी बनाया। प्राचीन शिक्षा के अनेक तत्व आधुनिक शिक्षा पद्धति के लिये भी सम्मान रूप से आदर्श एवं अनुकरणीय बने हुये हैं।

वैदिक शिक्षा प्रणाली

वैदिक शिक्षा-प्रणाली की ख़ास विशेषता थी "गुरुकुल " [शाब्दिक अर्थ 'शिक्षक का घर'] की प्रणाली. छात्रों को शिक्षा के पूरे काल के लिए शिक्षक और उनके परिवार के साथ रहना आवश्यक था. कुछ गुरुकुल एकांत वन-क्षेत्रों में होते थे, लेकिन सिद्धांत एक ही था – विद्यार्थियों को गुरु (शिक्षक) / गुरु और उनके परिवार के साथ रहना होता था. यह प्रणाली लगभग 2500 वर्षों तक यथावत चलती रही. पाठशालाओं तथा शिक्षण संस्थाओं का विकास बहुत बाद में हुआ.

शिक्षा का उद्देश्य:

शिक्षा के उद्देश्य का पहला उल्लेख ऋग्वेद के 10 वें मंडल में पाया जाता है. इस मंडल के एक सूक्त में कहा गया है कि विद्या का उद्देश्य वेदों तथा कर्मकांड के ज्ञान के अतिरिक्त समाज में सम्मान प्राप्त करना, सभा-समिति में बोलने में सक्षम होना, उचित-अनुचित का बोध आदि है. इससे प्रतीत होता है की पूर्व वैदिक युग में शिक्षा के उद्देश्य व्यावहारिक थे. बाद में, उपनिषद काल में, ज्ञान का उद्देश्य अधिक सूक्ष्म हो गया. विद्या को दो भागों में बांटा गया – परा विद्या और अपरा विद्या. अपरा विद्या में प्रायः समस्त पुस्तकीय तथा व्यावहारिक ज्ञान आ गया. केवल ब्रह्म विद्या को परा विद्या माना गया. परा विद्या श्रेष्ठ मानी गई क्योंकि उससे मोक्ष प्राप्त होता है. मोक्ष शिक्षा का अंतिम उद्देश्य हो गया. लेकिन यह लक्ष्य आदर्श ही रहा होगा, न की व्यावहारिक, क्योंकि मोक्ष सभी के लिए साध्य नहीं हो सकता. इतिहासकार ए.एस.अल्तेकर ने वैदिक शिक्षा के व्यावहारिक उद्देश्य बताये हैं जो निम्नलिखित हैं.

1) चरित्र निर्माण:

सत्यवादिता, संयम, व्यक्तिगत शील, सफाई, शांत स्वभाव और उदारता आदि अच्छे चरित्र के गुण किसी भी पेशे – पुरोहित, शिक्षक, चिकित्सक, राजसेवक, व्यापारी या सैनिक - के लिए बुनियादी आवश्यकता के रूप में प्राचीन ग्रंथों में निर्धारित किये गए हैं. शिक्षा का उद्देश्य इन गुणों का विकास करना था. मनुस्मृति में कहा गया है कि निर्मल चरित्र का ब्राह्मण सभी वेदों का ज्ञान रखने वाले दुश्चरित्र ब्राह्मण से अच्छा होता है. शिक्षा आरम्भ करने के पूर्व उपनयन संस्कार होता था जिसमें भावी विद्यार्थी को नैतिक आचरण के नियमों का पालन करने का उपदेश दिया जाता था. इसी तरह शिक्षा के समापन पर भी गुरु उपदेश देता था. उदाहरण के लिए तैत्तिरीय उपनिषद से दीक्षांत भाषण एक अंश उद्धृत है :"सच बोलो. धर्म का आचरण करो. वेदों का प्रतिदिन अभ्यास करो... माता को देवतुल्य समझो. पिता को देवतुल्य समझो. गुरु को देवतुल्य समझो. अतिथि को देवतुल्य समझो..."

2) व्यक्तित्व का विकास:

प्रत्येक शिक्षार्थी को आत्मनिर्भरता, आत्म - संयम और जीवन में वर्ण और आश्रम के अनुरूप आचरण करने का कौशल सिखाया जाता था. विद्यार्थी भिक्षा मांगकर और शारीरिक श्रम करके अपना और गुरु के परिवार का भरण-पोषण करते थे. इससे आत्म-निर्भरता उत्पन्न होती थी. संयम विद्यार्थी-जीवन ही नहीं समस्त जीवन का अनिवार्य अंग था और शिक्षा जीवन में इस पर बहुत बल दिया जाता था.. अपने वर्ण [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र] से सम्बंधित कार्य कुशल ढंग से कर पाने की सामर्थ्य शिक्षा द्वारा दी जाती थी. साथ ही यह भी सिखाया जाता था कि विभिन्न आश्रमों [गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास] में किस तरह आचरण करना होगा. अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में कहा गया है की गुरु शिक्षार्थी को दुबारा जन्म देता है, अर्थात उसका मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक कायाकल्प कर देता है.

3) कार्य-क्षमता और नागरिक जिम्मेदारी का विकास:

शिक्षा को गृहस्थ जीवन की भूमिका माना जाता था. गृहस्थ के अतिरिक्त सभी अन्य आश्रमों वाले व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताओं के लिए गृहस्थ पर निर्भर होते थे. इस तरह गृहस्थ न केवल अपने परिवार बल्कि अन्य वर्णों का भी पालन करता था. गुरु शिक्षार्थी को समाज में अपनी यह भूमिका निभाने में सक्षम बनाता था. इसके अतिरिक्त समाज को चलाने के लिए आवश्यक राजसेवक, न्यायाधीश, व्यापारी, पुरोहित तथा अन्य कुशल व्यक्ति गुरुकुलों द्वारा ही तैयार किये जाते थे.

4) विरासत और संस्कृति का संरक्षण:

आरम्भ में आर्यों को लिपि का ज्ञान नहीं था. समाज के सामने चुनौती थी की किस तरह मौखिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी वेदों को अपने मूल रूप में सुरक्षित रखा जाय. भारत के प्राचीन गुरुकुलों की यह विलक्षण उपलब्धि थी कि वैदिक साहित्य लगभग दो हजार साल तक मौखिक रूप में जीवित ही नहीं, अक्षुण्ण भी रखा.

वैदिक शिक्षा व्यापक सांस्कृतिक दृष्टि पर बल देती थी. शिक्षित व्यक्ति को साहित्य, कला, संगीत आदि की समझ

होनी चाहिए. उसे जीवन के उच्च आदर्शों का ज्ञान भी होना चाहिए. मात्र जीविकोपार्जन शिक्षा का उद्देश्य नहीं है. कालिदास ने कहा है कि जो विद्या का उपयोग केवल कमाई के लिए करते हैं वे विद्या के व्यापारी हैं जिनकी विद्या बिकाऊ माल भर है.

पूर्वजों की परंपरा और संस्कृति की रक्षा शिक्षित व्यक्ति का कर्तव्य था. चूँकि एक ही व्यक्ति विद्या की सभी शाखाओं में निष्णात नहीं हो सकता था, अतः वैदिक ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में विशेषज्ञता का विकास हुआ. साथ ही समस्त देश में कुछ ऐसे आधारभूत मूल्यों की स्थापना हुई जो आज भी सांस्कृतिक एकता के आधार हैं.

पाठ्यक्रम

समय-क्रम में वैदिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों का समावेश हुआ:

(1) चार संहितायें : ऋक, यजु:, साम और अथर्व
(2) ब्राह्मण
(3) आरण्यक
(4) उपनिषद
(5) छ: वेदांग : शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छंद, ज्योतिष

पहले चारों को मिलाकर 'वेद 'बनते हैं: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद. प्रत्येक वेद में एक संहिता और एक या अधिक ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद हैं. उदाहरण के लिए, ऋग्वेद में ऋक संहिता, दो ब्राह्मण, दो आरण्यक और दो उपनिषद है. संहितायें सबसे प्राचीन हैं. उनमें अधिकतर विभिन्न देवों की प्रार्थनाएं हैं. ब्राह्मण यज्ञ-याग की दृष्टि से वेदों की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ हैं. आरण्यक वैदिक यज्ञादि कर्मों के तत्त्व का विचार करते हैं. उपनिषद दर्शन के ग्रन्थ हैं. इन्हें वेदान्त भी कहा जाता है क्योंकि ये ग्रन्थ वेदों के अंत में आते हैं.

वेद:

ऋग्वेद वेदों में प्राचीनतम हैं. इसमें दस मंडल (विभाग) हैं, कुल मिलाकर इसमें 1000 से अधिक सूक्त (प्रार्थनाएं) हैं. प्रत्येक सूक्त में कई ऋचाएं (श्लोक) हैं. पूरे ऋग्वेद में लगभग 10000 ऋचाएं हैं.

सामवेद में ऋग्वेद के ही चुने हुए सूक्त हैं पर उनको गायन के उपयुक्त बनाकर प्रस्तुत किया गया है. सामवेद संगीत पर बल देता है. यजुर्वेद में भी अधिकतर सूक्त ऋग्वेद से लिए गए हैं. इस वेद में यज्ञ-पद्धति पर बल दिया गया है. अथर्ववेद की विशेषता यह है कि उसमें जादू-टोने से सम्बंधित बहुत सी सामग्री पाई जाती है जो संभवतः आर्येतर स्रोतों से आयी है. इसी कारण से अथर्ववेद को बहुत समय तक वेद माना ही नहीं जाता था.

छः वेदांग

1. यह ध्वनि और उच्चारण की विवेचना करने वाला शास्त्र था.
2. कल्प – यह यज्ञ अनुष्ठान की पद्धति का शास्त्र था.
3. निरुक्त – इस शास्त्र में वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति की व्याख्या की गयी है.
4. व्याकरण – इसका अर्थ नाम से ही स्पष्ट है.
5. छंद – इसका अर्थ भी नाम से ही स्पष्ट है.
6. ज्योतिष - वैदिक काल में ज्योतिष का अर्थ मुख्यतः नक्षत्रों और ग्रहों का अध्ययन था. राशि की अवधारणा नहीं थी. फलित ज्योतिष भी नहीं था.

धर्मेतर विषय

वैदिक काल के अंत तक दर्शन, गणित, बीजगणित, ज्यामिति, राजनीति शास्त्र, लोक प्रशासन, युद्ध-कला, तीरंदाजी, तलवारबाजी, ललित कला और चिकित्सा जैसे धर्मनिरपेक्ष विषय पाठ्यक्रम में शामिल हो गए थे. वैदिक काल के बाद कई अन्य विषय शामिल हुए, जैसे: तर्कशास्त्र, काव्यशास्त्र,साहित्य, इंजीनियरिंग, वास्तु शास्त्र, चिकित्सा,ज्योतिष, एवं षट दर्शन – पूर्व मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक

इन सभी शास्त्रों की शिक्षा के विषय में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है परन्तु चिकित्साशास्त्र की शिक्षा के बारे में पर्याप्त सामग्री चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में उपलब्ध है. इन ग्रंथों के अनुसार यह शिक्षा प्रवीण वैद्यों द्वारा दी जाती थी. पूरा पाठ्यक्रम छः वर्षों में समाप्त होता

था. चिकित्सा शास्त्र की आठ शाखाये होती थीं. इस शिक्षा के लिए अलग से उपनयन संस्कार की व्यवस्था थी.

यह अनुमान किया जा सकता है की चिकित्सा की तरह अन्य महत्वपूर्ण लौकिक विषयों की शिक्षा भी इसी प्रकार विशेषज्ञों द्वारा दी जाती होगी.

कृषि, पशुपालन, चिनाई, बढ़ईगीरी, बुनाई, लोहार की कला, कुम्हार का काम, अन्य प्रकार के बर्तन बनाने की कला, हथियार बनाने की कला इत्यादि उपयोगी विद्याएँ शुरुआत में परिवारों में और मास्टर कारीगरों द्वारा सिखायी जाती थीं. कुछ वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन जब संगठित और बड़े पैमाने पर होने लगा तो व्यावसायिक समुदायों ने विशेष कला या शिल्प में युवाओं के प्रशिक्षण की जिम्मेदारी ले ली.

शिक्षक

जब लिखित पुस्तकें नहीं थीं तो गुरु ज्ञान का एक मात्र स्रोत था. इसलिए प्राचीन ग्रंथों में गुरु की बड़ी महिमा बताई गई है. आगे अथर्वेद के ब्रह्मचर्य सूक्त का उल्लेख किया गया है जिसके अनुसार गुरु शिष्य को नया जन्म देता है. विद्यार्थी के लिए गुरु की आज्ञा मानना हर स्थिति में अनिवार्य था. परन्तु गुरु को यह महत्व अर्जित करना पड़ता था. गुरु को पाठ्यक्रम में निष्णात होना होता था. इसके लिए उसे स्वयं सतत अध्ययन और मनन करना पड़ता था. गोपथ ब्राह्मण में एक कथा है की एक गुरु शास्त्रार्थ हार गए. उन्होंने तत्काल शिक्षण कार्य बंद कर दिया और तभी पुनः आरम्भ किया जब वह अपने प्रतिद्वंद्वी जितने ही निष्णात हो गए. इससे पता चलता है की शिक्षक को अपनी योग्यता बढाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना पड़ता था. उनसे उच्च और आदर्श आचरण की आशा की जाती थी.

छात्र

वैदिक युग की शुरुआत को छोड़ दें तो बाद में प्रायः शिक्षा तीन उच्च वर्णों के पुरुषों तक सीमित थी. शूद्रों और स्त्रियों का प्रवेश गुरुकुलों में नहीं था. यह कदाचित वैदिक शिक्षा की सबसे बड़ी कमजोरी थी. परन्तु जो छात्र गुरुकुलों में स्थान पाने के अधिकारी थे उनको प्रवेश अवश्य मिलता था चाहे वे कितने ही गरीब हों. कोई तय फीस नहीं होने के कारण हर किसी को प्रवेश मिल सकता था. सभी छात्रों को एक तरह से सादा जीवन जीना पड़ता था, चाहे उनके माता-पिता कितने ही धनी या प्रभुतासंपन्न हों. छात्र को कुछ शारीरिक श्रम करना पड़ता था. गुरुकुल के नियमों का पालन करना होता था. गुरु की आज्ञा माननी होती थी, यद्यपि गौतम ने कहा है की छात्र अनुचित आज्ञा मानने को बाध्य नहीं था. चूँकि छात्र गुरु के परिवार में रहते थे अतः गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पिता-पुत्र जैसा होता था.

शिक्षण विधि

प्रातिशाख्य (वेदांग 'शिक्षा' से सम्बंधित ग्रन्थ) ग्रंथों में वैदिक शिक्षा पद्धति का विवरण मिलता है. प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत रूप से पढ़ाया जाता था. अर्थात गुरु एक बार में एक छात्र को पढाता था. छात्र को एक दिन में में दो या तीन वैदिक ऋचाएं याद करनी होती थीं. छात्र को गुरु के निर्देश के अनुसार शब्दों का सही उच्चारण करना होता था और ऋचाओं को ठीक उसी ढंग से बोलना या गाना होता था जो परम्परा से चला आता था. अध्यापन मौखिक था. लिपि का विकास होने के बाद भी वैदिक मन्त्रों का मौखिक अध्यापन जारी रहा क्योंकि उच्चारण और गायन की मूल परम्परा को मौखिक रूप में ही पूरी तरह सुरक्षित रखा जा सकता था. याद करके सीखने का तरीका केवल वैदिक संहिताओं के लिए प्रयोग होता था. अन्य विषयों को पढ़ाने के लिए व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, शास्त्रार्थ इत्यादि का सहारा लिया जाता था. छात्रों की संख्या कम होती थी ताकि गुरु प्रत्येक छात्र पर पर्याप्त ध्यान दे सके. अल्तेकर ने अनुमान किया है कि एक गुरु के पास बीस से अधिक छात्र नहीं होते होंगे.

अनुशासन

व्यक्तिगत नैतिकता और अच्छे आचरण पर जोर उपनयन से ही आरम्भ हो जाता था. विद्यार्थियों से आत्म - अनुशासन की उम्मीद की जाती थी. आत्मानुशासन शिक्षा का अभिन्न अंग था. शिक्षक के परिवार में रहने के कारण छात्रों को पुत्रवत आचरण करना होता था. गुरु अपने चरित्र और आचरण द्वारा उचित आदर्श छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करता था. इन सभी कारणों से दण्ड अनुशासन के लिए आवश्यक नहीं था. फिर भी मानव प्रकृति के अनुसार

छात्र कभी कभी अनुशासन भंग करते थे. इस दशा में मनु ने गुरु को सलाह दी है की वह छात्र को समझा बुझाकर सही रास्ते पर लाये. आपस्तम्ब ने कहा है कि गुरु दोषी छात्र को कुछ समय के लिए अपने सामने आने से मना कर सकता है [कक्षा से निष्कासन की तरह]. गौतम ने शारीरिक दण्ड की अनुमति दी है पर यह भी कहा है की अत्यधिक शारीरिक दण्ड देने पर गुरु को राजा द्वारा दण्डित किया जा सकता है.

नई शिक्षा नीति 2020

नई शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा नीति है जिसे भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई 2020 को घोषित किया गया। सन 1986 में जारी हुई नई शिक्षा नीति के बाद भारत की शिक्षा नीति में यह पहला नया परिवर्तन है।यह नीति अंतरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट पर आधारित है।

(1) नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के तहत वर्ष 2030 तक सकल नामांकन अनुपात (Gross Enrolment Ratio-GER) को 100% लाने का लक्ष्य रखा गया है।

(2) नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत शिक्षा क्षेत्र पर सकल घरेलू उत्पाद के 6% हिस्से के सार्वजनिक व्यय का लक्ष्य रखा गया है।

(3) 'मानव संसाधन प्रबंधन मंत्रालय' का नाम परिवर्तित कर 'शिक्षा मंत्रालय' कर दिया गया है।

(4) पाँचवीं कक्षा तक की शिक्षा में मातृभाषा/स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने पर बल दिया गया है। साथ ही मातृभाषा को कक्षा-8 और आगे की शिक्षा के लिये प्राथमिकता देने का सुझाव दिया गया है

(5) देश भर के उच्च शिक्षा संस्थानों के लिये "भारतीय उच्च शिक्षा परिषद" नामक एक एकल नियामक की परिकल्पना की गई है।

(6) शिक्षा नीति में यह पहला परिवर्तन बहुत पहले लिया गया था लेकिन अबकी बार 2020 में जारी किया गया

(7) और यह बहुत अच्छा परिवर्तन है।

पृष्ठभूमि

भारतीय संविधान के नीति निदेशक तत्वों में कहा गया है कि 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिये अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए। 1948 में डॉ॰ राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन हुआ था। तभी से राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण होना भी शुरू हुआ था। कोठारी आयोग (1964-1966) की सिफारिशों पे आधारित 1968 में पहली बार महत्त्वपूर्ण बदलाव वाला प्रस्ताव इन्दिरा गांधी के प्रधानमन्त्री काल में पारित हुआ था।

अगस्त 1985 'शिक्षा की चुनौती' नामक एक दस्तावेज तैयार किया गया जिसमें भारत के विभिन्न वर्गों (बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक, व्यावसायिक, प्रशासकीय आदि) ने अपनी शिक्षा सम्बन्धी टिप्पणियाँ दीं और 1986 में भारत सरकार ने 'नई शिक्षा नीति 1986' का प्रारूप तैयार किया। इस नीति की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें सारे देश के लिए एक समान शैक्षिक ढाँचे को स्वीकार किया और अधिकांश राज्यों ने 10 + 2 + 3 की संरचना को अपनाया। इसे राजीव गांधी के प्रधानमन्त्रीत्व में जारी किया गया था।

इस नीति में 1992 में संशोधन किया गया था। 2014 के आम चुनाव में भारतीय जनता पार्टी के चुनावी घोषणा पत्र में एक नवीन शिक्षा नीति बनाने का विषय शामिल था। 2019 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने नई शिक्षा नीति के लिये जनता से सलाह मांगना शुरू किया था।

7 अगस्त 2020 को शिक्षा नीति-2020 पर ऑनलाइन सभा में चर्चा में भाग लेते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी। (बाएँ) प्रसिद्ध अंतरिक्ष वैज्ञानिक के कस्तूरीरंगन।

नयी शिक्षा नीति-२०२० पर देश भर के शैक्षणिक संस्थानों के साथ चर्चा। इसमें बिड़ला प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान संस्थान, पिलानी, जामिया, पंजाब विश्वविद्यालय, तेजपुर विश्वविद्यालय, तथा कालीकट विश्वविद्यालय, केरल ने भाग लिया।

प्रमुख परिवर्तन-

इस नई नीति में मानव संसाधन मंत्रालय का नाम पुनः "शिक्षा मंत्रालय" करने का फैसला लिया गया है। इसमें समस्त उच्च शिक्षा (कानूनी एवं चिकित्सीय शिक्षा को छोड़कर) के लिए एक एकल निकाय के रूप में भारत उच्च शिक्षा आयोग का गठन करने का प्रावधान है। संगीत, खेल, योग आदि को सहायक पाठ्यक्रम या अतिरिक्त पाठ्यक्रम की बजाय मुख्य पाठ्यक्रम में ही जोड़ा जाएगा। शिक्षा तंत्र पर सकल घरेलू उत्पाद का कुल 6 प्रतिशत खर्च करने का लक्ष्य है जो इस समय 4.43% है। एँम॰ फिल॰ को समाप्त किया जायेगा। अब अनुसंधान में जाने के लिये तीन साल के स्नातक डिग्री के बाद एक साल स्नातकोत्तर करके पीएचडी में प्रवेश लिया जा सकता है।

नीति में शिक्षकों के प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया गया है। व्यापक सुधार के लिए शिक्षक प्रशिक्षण और सभी शिक्षा कार्यक्रमों को विश्वविद्यालयों या कॉलेजों के स्तर पर शामिल करने की सिफारिश की गई है। प्राइवेट स्कूलों में मनमाने ढंग से फीस रखने और बढ़ाने को भी रोकने का प्रयास किया जाएगा। पहले 'समूह' के अनुसार विषय चुने जाते थे, किन्तु अब उसमें भी बदलाव किया गया है। जो छात्र इंजीनियरिंग कर रहे हैं वह संगीत को भी अपने विषय के साथ पढ़ सकते हैं। नेशनल साइंस फाउंडेशन के तर्ज पर नेशनल रिसर्च फाउंडेशन लाई जाएगी जिससे पाठ्यक्रम में विज्ञान के साथ सामाजिक विज्ञान को भी शामिल किया जाएगा। नीति में पहले और दूसरे कक्षा में गणित और भाषा एवं चौथे और पांचवें कक्षा के बालकों के लेखन पर जोर देने की बात कही गई है।

स्कूलों में 10 +2 फार्मेट के स्थान पर 5 +3+3+4 फार्मेट को शामिल किया जाएगा। इसके तहत पहले पांच साल में प्री-प्राइमरी स्कूल के तीन साल और कक्षा एक और कक्षा दो सहित फाउंडेशन स्टेज शामिल होंगे। पहले जहां सरकारी स्कूल कक्षा एक से शुरू होती थी वहीं अब तीन साल के प्री-प्राइमरी के बाद कक्षा एक शुरू होगी। इसके बाद कक्षा 3-5 के तीन साल शामिल हैं। इसके बाद 3 साल का मिडिल स्टेज आएगा यानी कक्षा 6 से 8 तक की कक्षा। चौथा स्टेज (कक्षा 9 से 12वीं तक का) 4 साल का होगा। पहले जहां ११वीं कक्षा से विषय चुनने की आज़ादी थी, वही अब ९वीं कक्षा से रहेगी।

शिक्षण के माध्यम के रूप में पहली से पांचवीं तक मातृभाषा का इस्तेमाल किया जायेगा। इसमें रट्टा विद्या को ख़त्म करने की भी कोशिश की गई है जिसको मौजूदा व्यवस्था की बड़ी खामी माना जाता है। किसी कारणवश विद्यार्थी उच्च शिक्षा के बीच में ही कोर्स छोड़ के चले जाते हैं। ऐसा करने पर उन्हें कुछ नहीं मिलता एवं उन्हें डिग्री के लिये दोबारा से नई शुरुआत करनी पड़ती है। नई नीति में पहले वर्ष में कोर्स को छोड़ने पर प्रमाण पत्र, दूसरे वर्ष पे छोड़ने पे डिप्लोमा एवं अंतिम वर्ष पे छोड़ने पे डिग्री देने का प्रावधान है।

प्रतिक्रिया-

नई शिक्षा नीति की घोषणा के उपरान्त बुद्धिजीवियों, आम जनता एवं शिक्षा जगत में मिली-जुली प्रतिक्रिया रही। वहीं मुख्यता इसमें घोषित बदलावों का स्वागत किया गया है।[8] लेकिन इसके कई लक्ष्य के पूरा होने पर संदेह व्यक्त किया गया। शिक्षा पर जीडीपी का छह फीसदी खर्च करने का लक्ष्य बहुत ही पुराना है जिसे फिर से दोहराया गया है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के कुलपति एम॰ जगदीश कुमार ने इस शिक्षा नीति को समावेशी कहा।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में प्रस्तावित बदलाव कई स्तरों पर दिखाई देगा। नए पाठ्यक्रम में गैर प्रायोगिक विषयों में भी व्यावहारिक ज्ञान पर जोर दिया जाएगा। भाषाओं के पाठ्यक्रम में भी इसका असर दिखेगा। नया पाठ्यक्रम पहली जुलाई 2021 से शुरू होने वाले नए सत्र से लागू हो सकता है।

स्नातक स्तर पर लागू होने वाले न्यूनतम समान पाठ्यक्रम के संबंध में शासन से जारी दिशा-निर्देशों के आधार पर ये पाठ्यक्रम तैयार किए जा रहे हैं। शासन ने भाषाओं के पाठ्यक्रम में अनुवाद व स्क्रिप्ट राइटिंग समेत रोजगार से जुड़ी वाली लेखन की अन्य विधाओं को शामिल करने का सुझाव दिया है। इस तरह हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी समेत अन्य भाषाओं के पाठ्यक्रम को अब ज्यादा उपयोगी बनाया जाएगा। तैयार कराए जा रहे पाठ्यक्रम पर फीडबैक लेकर उसमें बदलाव भी किया जाना है। यह जिम्मेदारी उच्च शिक्षा परिषद को दी गई है। परिषद ने ही पाठ्यक्रमों को अपनी वेबसाइट पर अपलोड कर फीडबैक भी मांगे हैं।

नई नीति के तहत 12वीं के बाद उच्च शिक्षा के पहले वर्ष में प्रवेश लेने के इच्छुक छात्र को प्रथम वर्ष के लिए दो मुख्य विषयों के साथ एक संकाय का चुनाव करना होगा। दो प्रमुख विषयों के अलावा उन्हें प्रत्येक सेमेस्टर में किसी भी अन्य संकाय के एक और मुख्य विषय का चुनाव करना होगा। इसके साथ ही एक गौण विषय किसी अन्य संकाय से, एक व्यावसायिक पाठ्यक्रम (अपनी अभिरुचि के अनुसार) तथा एक अनिवार्य सह-शैक्षणिक पाठ्यक्रम का चयन करना होगा। शासन ने नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन और पाठ्यक्रमों की पुनर्संरचना से संबंधित जानकारी भी शिक्षकों को भी देने के निर्देश दिए हैं। इसके लिए सभी विश्वविद्यालयों को रेफ्रेशर कोर्स आयोजित करने के निर्देश दिए गए हैं। मार्च के महीने में होने वाले रेफ्रेशर कोर्स में विश्वविद्यालयों के अलावा महाविद्यालयों के शिक्षक भी शामिल किए जाएंग

संदर्भ ग्रंथ

1. त्रिपाठी, कुसुम. महिलाएँ दशा और दिशा. कुरूक्षेत्र. अंक, मार्च. 2007.
2. महला, अरविन्द और सुरेन्द्र कटारिया. सं. भारत में महिला सशक्तीकरणः प्रयास और बाधाए. मलिक एण्ड कम्पनी. जयपुर. 2013. पृ. 262.
3. दिनकर, रामधारी सिंह. संस्कृति के चार अध्याय.

4. विमल, कुमार. रामधारी सिंह दिनकर रचना-संचयन.
5. द्विवेदी, कपिलदेव. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति
6. गोयल, प्रीतिप्रभा. भारतीय संस्कृति
7. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, पृ. 257-58
8. Amartya Sen. The Argumentative Indian. Farrar, Straus and Giroux, New York, 2005, p. 7
9. कुमार, कमलेश. भारत की जनजाति महिलाएँ. कुरूक्षेत्र. अंक. मार्च. 2007, पृ. 23.
10. पाण्डेय, मैनेजर. भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा. नई दिल्ली, 2013. पृ. 9
11. टॉमस, मूर. यूटोपिया
12. "नई शिक्षा नीति: पढ़ाई, परीक्षा, रिपोर्ट कार्ड सब में होंगे ये बड़े बदलाव". आज तक. अभिगमन तिथि 3 जुलाई 2020.
13. "नई शिक्षा नीति पर BJP अध्यक्ष जेपी नड्डा बोले- नई शिक्षा नीति नए भारत की जरूरतों को ध्यान में रखती है". पंजाब केसरी. 29 जुलाई 2020. अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020.